शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 नवम्बर 2021
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

मीडिया में दलित भागीदारी का प्रश्न

डॉ.घनश्याम दास
सहायक प्रवक्ता.हिंदी (अतिथि)
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली, भारत

शोध संक्षेप

मीडिया को लोकतंत्र का चौथा हिस्सा होने का गौरव प्राप्त है। इस पर लोकतंत्र टिका हुआ है। सामाजिक स्तर पर मीडिया की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण है। यह जागरूकता पैदा कर समाज में जनमत निर्माण का कार्य करता है। मीडिया संदेशों के जरिए पूर्ण की जाने वाली एक सामाजिक अंतः प्रक्रिया है। मीडिया को दो रूपों में जाना जाता है: प्रिंट मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया। दोनों माध्यम अपने-अपने स्तर पर सामाजिक भागीदारी का निर्वाह करते हैं। समाचार पत्र, पत्रिकाएं, पैम्फलेट, इश्तिहार इत्यादि प्रिंट मीडिया के अंतर्गत आते हैं और टेलीविजन, रेडियो आदि इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के अंतर्गत। आज सोशल मीडिया भी सामाजिक भागीदारी के रूप में मीडिया का महत्वपूर्ण घटक बन चुका है। मीडिया समाज के सभी वर्गों को प्रभावित करता है। अतः प्रस्तुत शोध पत्र में मीडिया में दलित भागीदारी के प्रश्न पर विचार किया गया है।

भूमिका

भूमंडलीकरण के दौर में पूरी दुनिया विश्वग्राम में परिवर्तित हो गयी है। सूचनाओं के आदान-प्रदान ने देशों की दूरियों को मिटा दिया है। इसमें मीडिया की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है किसी देश की घटना पलभर में दुनिया को पता चल जाती है। इसका आकलन करते हुए प्रभा खेतान ने लिखा है, "भूमंडलीकरण के तहत सूचना समाज की रचना एक क्रांतिकारी परिवर्तन है। इसका कारण केवल कारखाना उत्पादन का क्षेत्र ही नहीं बल्कि सेवा क्षेत्र में राष्ट्र एवं पर.राष्ट्र स्तर पर क्रांतिकारी परिवर्तन घटित हुए हैं।"[1]

भूमंडलीकरण में महत्वपूर्ण है सूचनाक्रान्ति जिसके माध्यम से सारा विश्व एक छत के नीचे दिखाई दे रहा है और इसके व्यापक प्रभाव दिखाई दे रहे हैं। भूमंडलीकरण में मीडिया की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। हम सूचनाओं के व्यापक जाल में स्वयं को घिरा हुआ पाते हैं। सूचनाओं का यह संजाल यदि सकारात्मक हो तो सामाजिक विकास के अगले सोपान की ओर समाज का कदम होता है, लेकिन यदि यह पूर्वाग्रह से संचालित हो तो सामाजिक भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो सकती है, जो किसी भी समाज के लिए अच्छी स्थिति नहीं है।

मीडिया में दलित भागीदारी

मीडिया में दलितों की भागीदारी का प्रश्न आता है तो वहां इस संदर्भ में एक प्रकार की उदासीनता देखने को मिलती है। मीडिया में दलितों के प्रति उपेक्षा का भाव दिखाई देता है। मीडिया बड़ी चालाकी से दलितों के प्रश्न को दरकिनार करता है। इस संदर्भ में यह टिप्पणी देखने योग्य है :

"मीडिया बड़ी चतुराई से दलितों की बात मुख्य दो दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर दिखाता है।

एक यह कि दलित विषय पर बहुत सारे शो, पैनल डिस्कशन हो रहे हैं। यह सिद्ध करने का प्रयास करता है। दूसरा किसी भी विचार को गंभीरता से जनता के सामने नहीं रखना चाहता। असलियत यह है कि अखबार, पत्रिकाएं, रेडियो, टेलीविजन दलितों की अनदेखी करना चाहता है।"[2]

दरअसल दलितों के प्रति भेदभाव मीडिया हमेशा से करता आया है। हम देखते हैं कि मीडिया संगठनों जैसे प्रिंट और इलेक्ट्रानिक दोनों में दलितों की भागीदारी न के बराबर है। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि मीडिया एक सोची-समझी साजिश के तहत दलितों को मीडिया में नहीं आने देता। दलित विमर्श के शुरुआती दौर में अर्थात 90' के दशक में एक ब्रिटिश पत्रकार ने भारत के दलित पत्रकार से मिलने की इच्छा जाहिर की। एक भारतीय पत्रकार ने उस ब्रिटिश पत्रकार की मदद की और किसी एक दलित पत्रकार की खोज में लग गए। इस प्रसंग में एक पत्र 'एक दलित पत्रकार की खोज' शीर्षक से लेख छपा। इस लेख में लेखक ने लिखा, "सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त 686 पत्रकारों में से 454 उच्च जाति के थे और बाकी 232 किसी जातिसूचक नाम का प्रयोग नहीं करते।"[3]

यहाँ एक महत्वपूर्ण प्रश्न हमारे सामने आता है कि इस तरह की स्थिति क्यों है और उसके पीछे जिम्मेदार कौन है ? क्या यह मात्र एक संयोग हो सकता है कि इतने सारे पत्रकारों में दलित समाज से संबंधित कोई भी पत्रकार न मिले! क्या यह किसी सोची समझी साजिश के तहत नहीं हो रहा होगा ? निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि मीडिया की मानसिकता इस विषय में बहुत हद तक जिम्मेदार है जो दलितों को मीडिया में प्रवेश करने से रोकती है। यदि हम एक ऐसे समाज की परिकल्पना करते हैं जहां सामाजिक सद्भाव हो, प्रेम हो, सहयोग हो, साहचर्य की भावना हो अथवा सहयोग की भावना हो तो वहां इस तरह की मानसिकता से अलग होना अति आवश्यक है, क्योंकि हमारा देश और हमारी संस्कृति 'सर्वधर्म समभाव' और 'वसुधैव कुटुम्बकम' की बात करती है जो सभी मनुष्यों को साथ लेकर चलने की पक्षधर है। यही हमारे देश की ताक़त भी है। बिना किसी भेदभाव के ही किसी भी स्वस्थ समाज की कल्पना की जा सकती है।

686 पत्रकारों की जो सूची सरकार से मांगी गई थी उसके हवाले से यह सच सामने आया था और इस सूची को सरकार से मांगने वाले थे श्री बी एन उनियाल। श्री बीएन उनियाल इस संदर्भ में एक और बात जोड़ते हैं। वह कहते हैं, "अचानक मुझे महसूस हुआ कि पत्रकार की हैसियत से अपने कार्यकाल के पूरे 30 सालों में मैं किसी ऐसे सहकर्मी पत्रकार से नहीं मिला जो दलित हो, एक से भी नहीं। उससे भी बदतर था यह विचार कि उन तमाम सालों में मुझे कभी भी नहीं सूझा कि पत्रकारिता व्यवसाय में इतनी गंभीर गड़बड़ है, जो पत्रकार होने के नाते मुझे (स्व-चेतन से पहले ही) सूझना चाहिए था। इन तमाम वर्षों में मैंने अनेक पत्रकारों के साथ देश के लगभग हर जिले की यात्राएं की थीं और विभिन्न शहरों और कस्बों में सैकड़ों पत्रकारों व अन्य लोगों से मिल चुका था। फिर भी किसी दलित पत्रकार से मैं मिला होऊँ, ऐसा मुझे याद नहीं।"[4]

बी.एन. उनियाल का यह वक्तव्य कई मायने में अहम हो जाता है। यह वक्तव्य चेतना के स्तर पर भीतर तक झकझोरता चला जाता है। यह वक्तव्य समाजिक स्थिति पर सोचने को विवश

करता है। इस संदर्भ में मीडिया पर भी बड़े गहरे सवाल खड़े हो जाते हैं। इतिहास के पन्नों में यदि हम जाते हैं तो हमें दलित बहिष्कार, प्रतिकार और अपमान आदि का एक ऐसा सच दिखाई देता है जो कमोबेश आज भी चला आ रहा है और मीडिया भी इससे बच नहीं पाया अथवा कहें कि अछूता नहीं रहा है। वास्तव में मीडिया संगठनों पर देश और समाज की बहुत बड़ी जिम्मेदारियां होती हैं। अतः उनसे यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वह भेदभाव पूर्ण तरीके से संचालित हों, लेकिन मीडिया का एक पक्ष यह भी है कि उसने दलितों के साथ भेदभाव बरता। मीडिया जनमत निर्माण में बहुत महत्वपूर्ण रोल अदा करता है परंतु दलित जनमत के संदर्भ में मीडिया लगभग असफल दिखता है।

प्रिंट मीडिया हो या इलेक्ट्रॉनिक मीडिया दोनों में दलितों के प्रति घोर उपेक्षा मिलती है। मीडिया में दलितों की भागीदारी नहीं दिखती। किसी भी अखबार, पत्रिका आदि में दलित नदारद होते हैं। टीवी चैनल्स में भी दलितों की भागीदारी नहीं दिखती। यह सभी संस्थान दलितों के प्रति उपेक्षा का भाव लिए दिखते हैं। इस विषय में संजय कुमार का लेख अत्यंत पठनीय है। वह 'मीडिया में दलित नहीं' लेख में लिखते हैं, "आरक्षण के सहारे कार्यपालिका और विधायिका में दलित आए, लेकिन आज भी इस लोकतांत्रिक व्यवस्था में लोकतंत्र के चौथे खंभे पर काबिज होने में दलित पीछे ही नहीं बल्कि बहुत पीछे हैं। आंकड़े इस बात के गवाह हैं कि भारतीय मीडिया में वर्षों बाद आज भी दलित-पिछड़े हाशिए पर हैं, उनकी स्थिति सबसे खराब है। कहा जा सकता है कि 'ढूंढते रह जाओगे' लेकिन मीडिया में दलित नहीं मिलेंगे। गिने-चुने ही दलित मीडिया में हैं और वह भी उच्च पदों पर नहीं।"[5]

वस्तुतः यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि आजादी के इतने सालों बाद भी मीडिया संगठनों में दलितों की भागीदारी बहुत कम दिखती है। अक्सर लोग यह कहते हैं कि किसी ने दलितों को मीडिया में आने से रोका नहीं है, जो आना चाहे आ सकता है। बस काबिलियत होनी चाहिए। सवाल यह खड़ा होता है कि क्या दलित समाज में काबिलियत नहीं है ? यह मीडिया श्रम शक्ति का अंग क्यों नहीं है ? आज जबकि हम 21वीं सदी में प्रवेश कर चुके हैं, तब भी दलित इन संगठनों का हिस्सा नहीं हैं। वास्तव में सच्चाई कुछ और ही है। ऐसा नहीं है कि दलितों में काबिलियत नहीं है अथवा वह मीडिया संगठन में जा नहीं सकते। सच्चाई तो यह है कि उन्हें मीडिया में आने नहीं दिया जाता, उनका रास्ता रोका जाता है। मीडिया के प्रवेश द्वार पर ही दलितों को रोक दिया जाता है। जातीयता की तलवार से दलितों की काबिलियत को ध्वस्त कर दिया जाता है। ऐसे में दलित मीडिया संगठनों में कैसे प्रवेश कर सकता है। अतः यह कहना कि दलितों को मीडिया में आने से किसने रोका है एकदम गलत है, जो लोग ऐसा बोलते हैं, वही लोग दलितों को मीडिया संगठनों में आने से रोकते हैं। मीडिया में दलितों से संबंधित महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि मीडिया में दलित समाज की छवि क्या है ? हम आधुनिक दौर में जी रहे हैं। भूमंडलीकरण ने दुनिया को बहुत तेजी से बदला है और इस बदलाव का सामाजिक स्तर पर असर भी हुआ है। हम सूचनाओं के ऐसे दौर से गुजर रहे हैं जिसने न सिर्फ विश्व को एक प्लेटफार्म पर खड़ा कर दिया है बल्कि समाज को बहुत हद तक प्रभावित भी किया है। आज मल्टीमीडिया का युग है, इंटरनेट का युग है। इलेक्ट्रॉनिक क्रांति में हम जी रहे हैं। इंटरनेट ने

बहुत तेजी से लोगों की जिंदगी में प्रवेश किया है। ऐसे में समाज में बदलाव आना बहुत जरूरी हो जाता है। आज अनेक मीडिया चैनल्स बाज़ार में हैं और समाज पर उनका व्यापक असर भी है। न्यूज़ चैनलों पर दलितों से सम्बंधित मुद्दों को कितनी गंभीरता से लिया जाता है, यह सोचने का विषय है। बॉलीवुड सितारों के छींकने तक की घटनाएं मीडिया में ब्रेकिंग न्यूज़ का हिस्सा बन जाती हैं, लेकिन दलितों के घर जला दिए जाने की घटनाएं भी कई बार इन चैनल्स के लिए ख़ास मायने नहीं रखतीं हैं। दलित युवतियों से बलात्कार की सूचना मात्र देकर मीडिया अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेता है। कहने का तात्पर्य यह है कि दलितों से संबंधित गम्भीर मुद्दे भी मीडिया में अक्सर उपेक्षित हो जाते हैं। दलित समाज के साथ अत्याचार होता है, लेकिन मीडिया में बड़ा मुद्दा नहीं बन पाता। अक्सर मीडिया दलितों के हितों से संबंधित खबरों को दिखाने में दिलचस्पी नहीं दिखाता। दलित हितों से संबंधित खबरों को मीडिया सकारात्मक ढंग से पेश नहीं करता। इस संदर्भ में एक उदाहरण देना आवश्यक जान पड़ता है। बात जनवरी 2002 की है। दिल्ली के प्रसिद्ध रामलीला मैदान में बामसेफ द्वारा वार्षिक सम्मेलन का आयोजन किया गया था। इस वार्षिक सम्मेलन में दलित बड़ी संख्या में शामिल हुए थे। साथ ही लगभग 20 प्रमुख दलित पुस्तक वितरक भी उपस्थित हुए थे। इस सम्मेलन में उत्तरप्रदेश की तत्कालीन मुख्यमंत्री सुश्री मायावती के अलावा अनेक समाजसेवी विद्वान आदि उपस्थित हुए थे। इतना होने के बावजूद भी भारतीय मीडिया ने इस सम्मेलन को कोई खास तवज्जो नहीं दी। इसका क्या कारण हो सकता है ? क्या यह इसलिए नहीं कि यह दलित सम्मेलन था, इसे मीडिया का पूर्वाग्रह नहीं कहा जाएगा तो और क्या कहा जाएगा। बामसेफ का यह सम्मेलन निश्चित रूप से बहुत बड़े पैमाने पर था लेकिन मीडिया ने इस ओर बिल्कुल भी ध्यान ही नहीं दिया।

इसे मीडिया का दलित विरोधी रवैया न कहा जाए तो और क्या कहा जाए! किसी मंत्री की भैंस के खो जाने पर सभी मीडिया चैनल पर ब्रेकिंग न्यूज़ की बाढ़ सी आ जाती है लेकिन दलित युवतियों के साथ दुर्व्यवहार आदि की घटनाओं को मीडिया दरकिनार करता नजर आता है। गांव-देहातों में अक्सर दलित समाज के साथ अमानवीय घटनाएं होती रहती हैं लेकिन उनका कोई अता-पता नही चलता। ऐसे अनेक सवाल हैं जिनसे मीडिया को दो.चार होना ही होगा। मीडिया इन सवालों से आंखें चुराकर नहीं निकल सकता।

निष्कर्ष

मीडिया समाज की आंख-नाक और कान होता है। वह समाज को जहां जागरूक करता है वहीं उसके अधिकारों के प्रति सचेत भी करता है। मीडिया सूचनाओं के माध्यम से समाज को अच्छाइयों और बुराइयों के प्रति आगाह करता है और समाज का पथ प्रशस्त करता है। जहां तक मीडिया की सामाजिक जिम्मेदारी का सवाल है तो वहां मीडिया किसी के प्रति भी भेदभाव नहीं कर सकता। यदि वह ऐसा करेगा तो उससे समाज और राष्ट्र का अहित ही होगा। दलित, आदिवासी, पिछड़े, अति पिछड़े, महिलाएं आदि सभी के प्रति मीडिया को एक दृष्टिकोण से सोचने की आवश्यकता है क्योंकि उसका लक्ष्य बड़ा है और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मीडिया को भेदभाव से बाहर आना होगा। चाहे किसी दलित का मामला हो अथवा किसी स्त्री के प्रति

अन्याय की बात होए मीडिया को मुखर होकर सभी के पक्ष में खड़ा होना होगा। तभी एक स्वस्थ और समरस समाज की स्थापना हो पाएगी।

सन्दर्भ.ग्रन्थ

1 प्रभा खेतान, उपनिवेश में स्त्री, राजकमल प्रकाशनए नई दिल्ली, पहला संस्करण 2003, तीसरी आवृत्ति 2010, पृष्ठ 24

2 प्रस्तावना, मीडिया और दलित, सम्पादक डॉ श्योराज सिंह बेचैन एस एस गौतम, प्रकाशक गौतम बुक सेंटर प्रथम संस्करण 2009, पृष्ठ 11

3 प्रस्तावना, मीडिया और दलित, सम्पादक डॉ श्योराज सिंह बेचैन, एस एस गौतम, प्रकाशक गौतम बुक सेंटर प्रथम संस्करण 2009, पृष्ठ 7

4 बी एन उनियाल, मीडिया और दलित, सम्पादक डॉ श्योराज सिंह बेचैन एस एस गौतम, प्रकाशक गौतम बुक सेंटर प्रथम संस्करण 2009, पृष्ठ 14

5 संजय कुमार मीडिया और दलित, सम्पादक डॉ श्योराज सिंह बेचैन एस एस गौतम, प्रकाशक गौतम बुक सेंटर प्रथम संस्करण 2009, पृष्ठ 53